चतुर्थ अध्याय

कुमाऊँ मण्डल में शास्त्रीय संगीत संदर्भित वास्तुस्थिति एवं विकासोन्मुख गतिविधियाँ

आज संगीत का हमारे देश–प्रदेश में इतना प्रचार–प्रसार हो चुका है कि इसके प्रभाव से जनता का अधिकांश भाग शायद न बचा हो, फिर चाहे व किसी भी रूप में क्यों न हो, वह लोक संगीत हो, सुगम संगीत हो या फिर शास्त्रीय संगीत निश्चित रूप से आनन्द की अनुभूति बिखेरता है। हमारे जीवन में संगीत समाज के हर विभाग, हर स्तर में दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। जिसका कारण संगीत के प्रति विशेष आकर्षण व संगीत संदर्भित विकासोन्मुख गतिविधियों का सक्रिय होकर सुचारू रूप से बढ़ना रहा है परन्तु शास्त्रीय संगीत के शास्वत पथ पर हम किस ओर जा रहे हैं इस पर विचार करना भी आवश्यक है।

कुमाऊँ मण्डल में शास्त्रीय संगीत की वर्तमान स्थिति परिस्थिति को लेकर शोधार्थी द्वारा किये गये सर्वे के अनुसार इस अंचल के कुछ क्षेत्रों में शास्त्रीय संगीत के प्रति लोगों की प्रतिक्रिया उदासीन पायी गयी परन्तु कुछ क्षेत्रों में गतिविधियाँ निरन्तर सक्रिय रूप में अग्रसर रही हैं जिसके अन्तर्गत अल्मोड़ा कुमाऊँ का प्राचीन क्षेत्र होने के कारण संगीत का गढ़ क्षेत्र रहा है। साथ ही नैनीताल में शास्त्रीय संगीत सन्दर्भित गतिविधियाँ एक लम्बे अर्से से सक्रिय रूप में चली आई है। वर्तमान में हल्द्वानी क्षेत्र भी अपना विशिष्ट दर्जा बनाने में कारगर सिद्ध हो रहा है। आज कई संगीतज्ञ, विद्वान, कला प्रेमी इसके प्रचार–प्रसार हेतु सभी क्षेत्रों में प्रयासरत कार्य कर रहे हैं जिनके परिणामस्वरूप कई, प्रतियोगिताएं, संध्याएं, बैठके, गोष्ठियाँ, सम्मेलनों को बढ़ावा भी मिला है।

वर्तमान स्थिति को लेकर साक्षात्कार के दौरान कुमाऊँ मण्डल में शास्त्रीय संगीत की विकासोन्मुख गतिविधियों के संदर्भ में शास्त्रीय गायक नलिन ढोलकिया जी का कहना है कि ''लगभग 50,60 वर्ष पूर्व इस अंचल में शास्त्रीय संगीत की विद्या बड़ी समृद्ध थी, एक उचित अनुकूलित वातावरण था। लोगों के पास समय था, पाश्चात्य संगीत तथा फिल्मी संगीत का द्रुष्प्रभाव भी न था, वैज्ञानिक उपकरणों का अभाव था, परन्तु आज के इस भौतिकवादी युग में

स्थिति बिल्कुल भिन्न हो गयी है, आज के अति गतिशील युग में वर्तमान संदर्भ में हालांकि शास्त्रीय संगीत के संवर्धन व संरक्षण के लिए निरन्तर सराहनीय प्रयासरत कार्य तो हो रहे हैं। गतिविधियाँ भी प्रयत्नशील है, परन्तु कहीं न कहीं गुणवत्ता और परिपक्वता की दृष्टि से स्तर में गिरावट भी आ गयी है, जो आज की स्थिति को देखते हुए एक जटिल समस्या है।''[1]

कुमाऊँ मण्डल में शास्त्रीय संगीत की यह विद्या निरन्तर परिवर्तन के साथ सदियों से चली आयी एक विकसित परम्परा है जिसके अन्तर्गत कुमाऊँनी रामलीला का मंचन हो, शरदोत्सव का आयेजन, होली की धूम यह फिर कुमाऊँनी सांस्कृतिक कार्यक्रम, जिनमें शास्त्रीय संगीत अपनी अहम् भूमिका निभाता है। शारदीय नवरात्रियों में आयोजित रामलीला जो शास्त्रीय संगीत आधारित रागों के बिना अधूरी सी प्रतीत होती है वही बसन्त ऋतु के आगमन पर कुमाऊँनी बैठकी होली में शास्त्रीय संगीत की श्रेष्ठतम् विद्याओं की अठखेलियाँ गीत संगीत में स्वर–ताल के समयबद्ध रागों का पूर्ण निर्वाहन, शास्त्रीय गायन की सुमधुरता कुमाऊँ मण्डल के अलावा किसी अन्य क्षेत्र में देखने को नहीं मिलती।

अतः कुमाऊँ मण्डल में आयोजित शास्त्रीय सांगीतिक संदर्भित विकासोन्मुख गतिविधियों के अन्तर्गत धार्मिक अनुष्ठान, पर्व–उत्सव तथा कुमाऊँ मण्डल में आयोजित शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रम प्रतियोगिताएं एवं सम्मेलनों का संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है।

कुमाऊँ मण्डल में आयोजित धार्मिक अनुष्ठान, पर्व–उत्सव

कुमाऊँनी लोग प्रत्येक वर्ष भर मनाये जाने वाले सभी पर्व–उत्सव, अनुष्ठान एवं मेलों को बड़े उत्साह पूर्वक मनाते हैं, जिनमें कई रंगारंग कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है परन्तु शास्त्रीय संगीत से संदर्भित विद्याओं में विशेषतः कुमाऊँ में होली व रामलीला की विशिष्ट परम्परा शास्त्रीय संगीत से

जन्मी और आम जनमानस की होकर रह गई। यह निरन्तर गतिशील परिवर्तन के साथ कुमाऊँ में अपनी विशिष्ठ महत्त्वता बनाये हुए है।

कुमाऊँनी बैठकी होली

होली भारतीय संस्कृति का एक ऐतिहासिक सत्य, चिरपुरातन परम्पराओं की संवेदनशील अभिव्यंजना, सौहार्दपूर्ण सामूहिक स्नेह व अनुभूतियों की मधुर अभिव्यक्ति का प्रतीक है। यह पर्व सम्पूर्ण भारत में बसन्तोत्सव होलिकोत्सव, रंगों का त्यौहार के रूप में मनाया जाता है यह पूर्ण रूप से देवी–देवताओं में मुख्यतः श्रीकृष्ण को समर्पित है।

कुमाऊँ में होली का प्रवेश 16वीं सदी के राजा कल्याण चंद वंशीय के शासन काल के आस–पास का माना है, जिसमें कुछ पंक्तियों में राजाओं के नाम स्पष्ट है –

सखियाँ ले आयी गुलाल लाल

होरी खेल रहे है

नन्द नन्दन ज्यू रे

सकल सभा सद खेल रहे है

कर धर ऊपर थाल री

तुम राजा महाराज प्रद्युम्न सा

मेरी करो प्रतिपाल लाल होरी।[2]

यह गीत से ज्ञात होता है कि राजा प्रद्युम्न साह के शासन में यह प्रथा कुमाऊँ में मनायी जाने लगी परन्तु कुछ विद्वानों का यह भी मानना है कि होली का आरम्भ कुमाऊँ में मैदानी क्षेत्रों से आये लोगों द्वारा हुआ। कुमाऊँनी होली में

ब्रज भाषा का प्रभाव है क्योंकि होली के गीत ब्रजभाषा में अधिक प्रचलित हैं इसलिये कहते है कि होली का आगमन मथुरा से हुआ।

कुमाऊँ में होली मनाने का गढ़ अल्मोड़ा क्षेत्र हमेशा से ही आगे रहा है। यहाँ होलियारों की संख्या अत्यधिक है। कहते हैं ''कुमाऊँनी बैठकी होली की गंगोत्री अल्मोड़ा नगरी से शुरू हुई। यह शैली रामपुर घराने के उस्ताद अमानत उल्ला खाँ की देन है जिनके विषय में लगभग वर्ष 1850–60 में होली के प्रारम्भ होने की जानकारी मिलती है।''[3]

कुमाऊँ में होली गायन की एक सामूहिक व सुव्यवस्थित परम्परा है यहाँ होली के दो स्वरूप है बैठकी होली व खड़ी होली। खड़ी और बैठकी होली के अलावा होलियों का एक रूप महिला होली भी है, ये होलिया अपने में निराली होती है। कुमाऊँनी बैठकी होली गायन की विशेषता यह है कि यह पूर्णतयः शास्त्रीय संगीत के मूलभूत सिद्धान्तों पर आधारित है। जिसमें समयानुसार निधारित रागों का गायन किया जाता है। यह गायन शैली विभिन्न राग–रागिनियों से ढ़ली और सवरी है, यह शैली गाने का अपना एक अलग ही ढंग है, जो विभिन्न रागों में प्रारम्भ करते हुए धमार से राग कल्याण, श्याम कल्याण, यमन, पूरिया कल्याण, काफी, जंगल काफी, खमाज, विहाग, जयजयवंती, देश, झिंझोटी साहना, परज, जोगिया मालकौंस आदि रागों से होती हुई भैरवी के साथ बैठकी समाप्त की जाती है। नैनीताल के वरिष्ठ होली गायक श्री गंगा प्रसाद साह जी बताते हैं कि ''कुमाऊँ की होली देश के दूसरे इलाकों से अपने रूप में अलग व खास है। मैदानी क्षेत्रों में होली राग काफी में गाई जाती है, परन्तु कुमाऊँ में इसे अनेक रागों में गाया जाता है।''[4]

''मुख्यतः होलिया निम्न रागों पर आधारित गायी जाती है – धमार, परज, काफी, सारंग, भीमपलासी, कल्याण, हमीर, सोहनी, केदार, बागेश्वरी, श्याम कल्याण, झिझोंटी, जंगला काफी, सिंदूरा, खमाज, बहार, तिलंग मालगुंजी, दरबारी कान्हड़ा, सहाना, बिहाग, देश, जयजयवंती, पीलू भैरवी इत्यादि।''[5]

उपर्युक्त अनेक राग रागिनियों में होली अपनी विशिष्ट ताल ठेका दीपचन्दी, चाँचर, कहरवा, तीनताल, इत्यादि में बंधी है, जिससे होली गायकी अत्यन्त मधुर व कर्णप्रिय लगती है, यहाँ का प्रत्येक गायक जब होली गाता है तो ऐसा प्रतीत होता है कि वह शास्त्रीय संगीत का पूर्ण ज्ञान, अनुभव के साथ गायन शैली की बारिकियों को भली–भाँति समझने की पूर्ण क्षमता रखता है। इसलिए यदि यह कहा जाए कि यह गायन शैली इन्हें विरासत में मिली हैं तो अतिश्योक्ति नहीं होगी।

''ब्रज के कवि 'चन्द्रसखी' ने अपने भजनावली में जो गीत लिखे हैं। वह यहाँ की होली में प्रयुक्त मात्रा में मिलते हैं। सन् 1841 के लगभग कृष्ण चन्द्र व्यास ने 'चन्द्रसखी' के काव्य को संगीत की सहायता से शास्त्रीय संगीत में निबद्ध किया और फिर अनेक विद्वानों तथा संगीताचार्यों व कुमाऊँ के लोगों ने उनकी रचनाओं को कुमाऊँनी होली में लिया।''[6]

बैठकी होली एक नियमबद्ध संरचना निम्न प्रकार से है –

बैठी – होली

स्थायी – सब को मुबारक होरी

फागुन रितु शुभ अलबेली

अन्तरा – घर घर अंगना रंग अबीर रहे

खुशियों की रंग रेली, तर रंग लो

सब प्रभू के रंग में रंग लो मन की चोली

स्वरलिपि – ताल 16 मात्रा की दीपचन्दी।[7]

स्थायी –

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
									सासा	रे	रेप	ग	रे–	म	–म
									सब	को	ऽमु	बा	ऽऽ	र	ऽक
प	ऽ	प	–	मप	मप	धप	मप	गरे	म	धध	धध	ध	पधनी	ध–प	पप
हो	ऽ	री	ऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	फा	गुन	रितु	शु	भऽऽ	ऽऽऽ	अल
म	प	ध	प	म	प	ग	रे	सा	सा						
बे	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ली	ऽ	स	ब						

अन्तरा –

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
								रें	रें	रें	रें	रें	रें	रें	रें
								घ	र	घ	र	अं	ऽ	ग	ना
सारेंगं	रेंसां	सां	गरेंसां	नीनी	नीनी	पध	सांसां	नीनी	नीनी	सां	नी	ध	प	ध	नीनी
ऽऽऽ	ऽऽ	रं	गऽऽ	अबी	ऽऽ	ऽऽ	रहे	खुशि	योऽ	की	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	रंग
सां	–	–	–	ग	म	ध	ध	ध	ध	ध	नी	ध	प	–	धध
रे	ली	ऽ	ऽ	त	न	रं	ग	लो	ऽ	रं	ग	लो	ऽ	ऽ	ऽतु
प	–	नी	नी	नी	सां	सां	प	ध	ग	रे	नी	नी	नी	नीसां	नीनी
म	ऽ	स	ब	प्र	भु	के	रं	ग	में	ऽ	रं	ग	लो	मन	कीडऽ
सां	–	सां	सां	प	ध	ग	रे								
चो	ऽ	ली	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ								

बैठी होली में जिस दीपचन्दी ताल का प्रयोग होता है। उसमें 16 मात्राएँ प्रयुक्त होती है जो इस प्रकार है।[8]

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
धा	धेधे	धिं	धेधे	धाग	धागे	धिं	धेधे	ता	केके	तिं	केके	धाग	धागे	धिं	धेधे
×															

ये दीपचंदी 16 मात्रा की है परन्तु शास्त्रीय संगीत की ठुमरियों के साथ बजाई जाने वाली जत ताल से कुछ भिन्न है।[9]

जत ताल – (16 मात्रा)

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
ध	धेधे	धिं	धेधे	धाग	धागे	तिं	केके	ता	केके	तिं	केके	धाग	धागे	धिं	धेधे
×															

प्रारम्भ में स्थायी गाकर उसका बढ़ावा किया जाता है फिर उसी को तीन ताल में बराबर की लय में गाकर कहरवा ताल की लग्घी बजाई जाती है। पुनः स्थायी को सम पर आकर उसे पूरा कर अन्तरे को उठाया जाता है। उसमें भी यही क्रम रहता है पहले अन्तरा गाकर उसके बोल बनाकर बढ़त की जाती है फिर उसे बराबर की ताल में गाकर कहरवा ताल की लग्घी बजाई जाती है अन्त में पुनः स्थायी पर आकर समाप्त किया जाता है। इन होरियों की एक विशेष बात यह हैं कि इससे होली के बोल पर जहाँ सम होता है, वह निश्चित होता है। अतः ताल के बोलों पर उनका कोई निश्चित स्थान नहीं होता। वह हर बार बदलता रहता है। कभी–कभी सम से पहले ही गीत समाप्त होने पर पुनः उसके शब्दों को बार–बार गाकर सम पर आया जाता है।

शोध कार्य के दौरान कुछ होली गायकों के साक्षात्कार से यह ज्ञात हो पाया कि होली में ठुमरी अंश की प्रधानता है, जिसको आज के संगीतज्ञ बड़ी हैरत की दृष्टि से देखते है पुराने होली गायकों की गायकी में उनका अपना 'ठाह' स्टाइल है जिसे हर कोई गायक उनके 'ठाह' के अनुसार नहीं गा पाता। बैठी होली वास्तव में शास्त्रीय संगीत की दृष्टि से ठुमरी गायन से अधिक मिलती है। इसके विषय बोल बनाव, बढ़त, लग्घी का काम ठुमरी गायन से मिलता है। प्रारम्भ में होली गायन में 14 मात्रा की धमार ताल का ही प्रयोग होता था, परन्तु अब वर्तमान में होलिया ठुमरी गायन के अधिक निकट है। आजकल प्रचलित बैठी होलिया अधिकतर दीपचन्दी ताल में गाई जाती है। होली गायन शैली की प्रस्तुति में पहले नृत्य का प्रावधान था जो प्रायः अब लुप्त होता जा रहा है, जिसमें श्री कृष्ण की लीलाओं में नृत्य रास लीला को होली गायक या होलियार नृत्य का स्वांग रचकर नृत्य प्रस्तुत करते थे।

वर्तमान में बैठेकी होली के गीत–संगीत ने अपना क्षेत्र विस्तृत किया है। यह मौखिक परम्परा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी द्वारा अपनायी गयी है। इस प्राचीन पद्धति को पुरानी पीढ़ी का कलाकार नई पीढ़ी के कलाकार को पूर्वजों की सौगात में सौंपता आया है यही कारण है कि हम इस परम्परा को आज भी बचाये हुए है आज भी कई कलाकार अपनी इस विशिष्ट परम्परा का प्रचार–प्रसार जगह–जगह कर रहे हैं। युवा पीढ़ी विशेष रूचि लेकर अपनी इस परम्परा से अवगत हो रही है। कुमाऊँ में होली की बैठकों का आयोजन कुमाऊँनी क्षेत्रों में रामनगर, काशीपुर, अल्मोड़ा, नैनीताल, रूद्रपुर, हल्द्वानी, पिथौरागढ़, इत्यादि क्षेत्रों में आज भी आयोजित किये जा रहे हैं।

अन्ततः कुमाऊँ अंचल की कुमाऊँनी बैठकी होली जो इसी नाम से प्रसिद्ध है। यह शास्त्रीयता में बंधी पूर्णतः भक्ति व परमात्मा के प्रति अटूट आस्था का प्रतीक है। यह गायन शैली यहाँ के लोगों को विरासत में मिली है, जिसको और

अधिक प्रोत्साहित करते हुए कुमाऊँनी संस्कृति की अमूल्य विधा का संवर्धन व संरक्षण भी किया जाना अति आवश्यक है।

कुमाऊँनी रामलीला –

रामलीला में राम ऐसे जननायक थे कि उन्होंने निर्विवाद रूप से भारतीय संस्कृति के मूल्यों, मर्यादाओं को मानकर अपना पूर्ण जीवन एक आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया। भारत में सभी जगहों पर रामलीला का मंचन अपनी–अपनी भाषा, वेशभूषा ताल, लय के साथ होता है।

रामलीला का मंचन

''महर्षि वाल्मिकी ने रामकथा की रचना रामायण नाम से की। यह राम के जीवन गाथा का पहला काव्यात्मक वर्णन है। 16वीं शताब्दी में गोस्वामी तुलसीदास ने राम की कथा को 'रामचरित्र मानस' नाम से लिपिबद्ध किया और तुलसी ने इसे गा–गाकर जनमानस तक पहुचाया था।''[10]

कुमाऊँ की सर्वप्रथम रामलीला का शुभारम्भ सन् 1860 में देवी दत्त जोशी द्वारा बद्रेश्वर अल्मोड़ा में किया तत्परान्त मोतीराम साह ने सन् 1880 में नैनीताल, शिवलाल साह ने 1890 में बागेश्वर, गंगाराम पुनेठा ने सन् 1902 में पिथौरागढ़ में रामलीला की नींव रखी।[11]

नैनीताल के निवासी श्री विश्वम्भर नाथ साह (सखा जी) ने कुमाऊँ की रामलीला के बारे में लिखा है – ''चंदवंश के राजाओं के उद्भव के पश्चात् भी कला ने नया रूप लिया जन संस्कृति ने नवीन परन्तु उन्नत प्रतीकों को

अंगीकार किया। कुमाऊँनी संस्कृति में ये नाट्य प्रतीक आज भी कुमाऊँ को विशिष्ट स्थान प्रदान करने में सार्थक सिद्ध हुए है इसलिये इसमें नवीनता सौन्दर्य कला (ध्वनि व लय) एक साथ दृष्टिगोचर होती है।''[12]

''अठारवीं शताब्दी के पश्चात् कुमाऊँ में रामलीला का प्रदर्शन बढ़ा, जो ब्रज से यहाँ पहुँचा। रामलीला की शैली, गायन, ताल, छन्द का जो नाट्य रूप था सम्भवतः इसी से अभिप्रेरित कुमाऊँ के विद्वानों के मन में रामलीला को नया रूप देने का विचार आया और ''कुमाऊँ की रामलीला'' उभरकर सामने आई, कुमाऊँ की रामलीला के मर्मज्ञ इस बात को मानते है कि ब्रज की रामलीला के अतिरिक्त 'नौटंकी शैली' का प्रभाव यहाँ की रामलीला पर है। पारसी रंगमंच का भी इसमें अपना प्रभाव है। श्री देवी दत्त जोशी ने पारसी नाटक के आधार पर सबसे पहले बरेली और मुरादाबाद में कुमाऊँनी तर्ज की पहली रामलीला सन् 1830 में आयोजित की थी उसी आधार पर सन् 1860 में अल्मोड़ा में पहली रामलीला बद्रेश्वर में प्रदर्शित की थी।''[13]

''19वीं शताब्दी के मध्य में कुमाऊँ में रामलीला के लिए विशेष प्रयास हुए। जिस रूप में कूर्मांचलीय संस्कृति के केन्द्र अल्मोड़ा में हुआ, जिसका फैलाव अल्मोड़ा शहर में ही नन्दादेवी, जाखनदेवी, पाण्डेखोला, श्री लक्ष्मी भण्डार हुक्का क्लब, धारानौला आदि स्थानों पर भी रामलीला होने लगी।''[14]

यह फैलाव पिथौरागढ़ नैनीताल जनपद में भी हुआ। कुमाऊँ की रामलीला का प्रचार–प्रसार बढ़ने के साथ–साथ रामलीला के रूपों में भी नयापन आने लगा। ''नृत्य सम्राट उदयशंकर के अल्मोड़ा प्रवास के समय यहाँ की रामलीला में कई प्रयोग किये गये। 1941 में इन्होंने पातालदेवी (अल्मोड़ा) में छाया चित्रों के मध्यम से रामलीला का प्रदर्शन किया। 1931 ई. में श्री जानकी नाथ जोशी के प्रयास से शिमला में कुमाऊँनी रामलीला का प्रदर्शन किया गया।''[15]

इस प्रकार कुमाऊँ की रामलीला परम्परा पर्वतांचल से फैलकर दिल्ली, लखनऊ व देश के अन्य भागों में पहुँची। आज रामलीला की परम्परा अल्मोड़ा नगरी से शुरू होकर कुमाऊँनी जिलों के पिथैरागढ़, नैनीताल, बागेश्वर, चम्पावत, ऊधमसिंह नगर के विभिन्न छोटे–बड़े गाँव, कस्बों नगरों में आयोजित की जाती है।

कुमाऊँ की रामलीला जिसमें राम जन्म से लेकर भरत मिलाप तक की लीला का मंचन होता हैं। रामलीला शैली अपनी गयेता के कारण संगीत प्रधान रही है इसका सबसे महत्त्वपूर्ण रोचक व सुन्दर अंग इसका गीत व नाट्य है इसलिए सबसे अधिक ध्यान गेयता पर ही दिया जाता है भारतीय शास्त्रीय संगीत का इसमें गहरा प्रभाव है। कुमाऊँ की रामलीला में कई शास्त्रीय रागों की बहुलता है जिसमें शास्त्रीय रागों में बिलावल, पीलू, देश, जयजयवंती, भैरवी, झिंझोटी मालकौंस आदि का प्रयोग होता है जिसे हमारे बुजुर्ग गायकों ने शास्त्रीय रागों में कई पात्रों को गाकर प्रस्तुत किया, जिसके पात्र आज भी हमारी रामलीला में परिलक्षित होते हैं। जैसे–रामलीला में दशरथ कैकयी सम्वाद में राग बिहाग, जयजयवंती, परज रागों का मिश्रण है। मुख्यतः रामलीला में बिलावल, पीलू, भैरव कलिंगड़ा जयजयवंती, आदि रागों को अधिक प्रयोग में लाया जाता है, जो शास्त्रीय संगीत के काफी नजदीक के पात्रों को दृष्टिगत करते है। एक ही प्रसंग व एक ही पात्र से अलग–अलग रागों का प्रयोग किया जाता है। साथ ही अधिकांशतः सोलह मात्रा की चाँचर, तीनताल तथा रूपक व कहरवा ताल बजायी जाती है। ''कुमाऊँनी रामलीला के प्रायः सभी गीत दादरा, कहरवा, रूपक, चाँचर आदि तालों में बंधे हुए हैं। इसमें मुख्यतः गेय सम्वादों का ही प्रयोग किया जाता है। कहीं–कहीं सम्पर्क सूत्रों के रूप में गद्य सम्वाद भी रखे गये हैं। जैसे–अंगद रावण सम्वाद में मानस के दोहे और चौपाइयों का पूर्ण प्रयोग किया जाता है।''[16]

गेयता में नवीनता व वैविध्य को दृष्टिगोचर रखते हुए कुमाऊँ की रामलीला में गज़ल का समावेश भी किया गया है। सम्वाद गीतों के अलावा दोहे और चौपाइयों का कुमाऊँ की रामलीला में विशिष्ट स्थान है। इनकी अपनी एक गायन शैली है जो पूर्णरूपेण संगीतमय है, दोहों का गायन भिन्न–भिन्न रूपों में परिस्थिति और पात्रों के अनुसार होता है। जैसे – ''चौपाई का गायन अति विलम्बित होता है किन्तु बार–बार इस एकरस हो रही चौपाई में समयानुसार अन्य रागों के स्वरों को डालकर भी कर्णप्रिय बनाया जाता है। दर्शकों को अभिनय के साथ समझाने के लिए विलम्बित लय के बीच–बीच में दुगुन लय भी की जाती है। खमाज में भैरवी, केदार, देश रागों के स्वरों का मिश्रण कर इनमें भेद दिखाई देता है।''[17] इस प्रकार अनेक सम्वाद पात्रों में गायन पद्धति संगीत में बधी हुई लयात्मक व रोचक होती है जो अत्यधिक लोकप्रिय है।

निष्कर्ष जहाँ कुमाऊँ की रामलीला में शास्त्रीय संगीत में अनेक रागों का ऐसा मिश्रित मनोरम एवं कर्णप्रिय रूप है। वहीं यहाँ की रामलीला में ब्रज के लोक संगीत की स्पष्ट छाप भी है, जो कि समान्य व्यक्ति को भी आकर्षित करती है। समय–समय पर नये गीतों को इसमें जोड़ दिया जाना ही इसके लचीलेपन के स्वरूप की पुष्टि करता है। यहाँ के लोगों ने शास्त्रीय के निकट जाकर रामलीला मंचन की परम्परा जारी की, जो आज भी लोक और शास्त्र का अद्‌भुत संगम है। विरासत से चली आयी यह परम्परा भक्ति संगीत और अभिनय के एक अनूठे संगम से युक्त भारतीय धर्म व संस्कृति का पोशाक रही है, जो जन सामान्य में मर्यादा पुरूषोत्तम राम के चरित्र को प्रचारित करने के साथ–साथ धार्मिक आस्था के रूप में भी कुमाऊँनी रामलीला उत्कृष्ट है।

कुमाऊँ मण्डल में आयोजित शास्त्रीय प्रतियोगिताएँ एवं सम्मेलन –

आज देश के प्रत्येक हिस्सों में सांगीतिक प्रतियोगितायें आयोजित की जा रही है। शिक्षण संस्थाओं में क्षेत्रीय, अन्तर्क्षेत्रीय तथा राज्य स्तरीय प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जा रहा है। इन प्रतिस्पर्धाओं में विद्यार्थियों की कला और

निखरकर सामने आती है। आज कई संगीत सम्मेलनों, समारोहों में भी प्रतिस्पर्धाओं की भरमार है, जिनमें विजेता को अच्छा पारितोषित वितरित किया जाता है।

''सन् 1952 में भारत सरकार ने संगीत को प्रोत्साहन देने वाले व्यक्तियों को पदक सम्मान देना प्रारम्भ किया''[18] तथा ''सन् 1953 में 'संगीत नाटक आदमी' की स्थापना की गई।''[19] इस कार्य से निश्चित ही संगीत को प्रोत्साहन मिला तथा ''सन् 1954 में ललित कला अकादमी''[20] की स्थापना हुई।

पहले उत्तराखण्ड, उत्तरप्रदेश राज्य का ही भाग था इसलिये यहाँ पर 13 नवम्बर 1963 को 'संगीत नाटक अकादमी' की स्थापना, सस्कृति विभाग उत्तर प्रदेश में हुई थी।[21]

अपने स्थापना वर्ष से ही अकादमी शास्त्रीय संगीत, नृत्य, लोक संगीत, लोकनाट्य की परम्पराओं का प्रचार–प्रसार एवं परिरक्षण का महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही है। इसके साथ ही राज्य ''ललित कला अकादमी की स्थापना 8 फरवरी 1962 में उत्तर प्रदेश के संस्कृति विभाग की पूर्णतः वित्त पोषित स्वायत्तशासी ईकाई के रूप में हुई।''[22]

नैनीताल में संगीत कला अकादमी द्वारा आयोजित संगीत संध्या में संतूर वादन करते पार्थो राय चौधरी एवं तबले पर संगत विनोद कुमार

संगीत कला अकादमी द्वारा आयोजित शास्त्रीय संगीत संध्या कार्यक्रम में प्रस्तुत कलाकार

इन अकादमीयों ने कलाकारों को उनकी कला प्रदर्शन करने तथा समाज में यश कमाने के अवसर प्रदान किये। जिसमें कुमाऊँ मण्डल में आयोजित

प्रतियोगिताओं में समय–समय पर अनेक राष्ट्रीय स्तर के संगीत महोत्सवों, सम्मेलनों का आयोजन भी सम्पन्न होते रहे, शरदमहोत्सव में संगीत नाटक आकदमी के सौजन्य से संगीतिक प्रतियोगिताओं में गायन, वादन, नृत्य तीनों कलाओं की प्रतिस्पर्धा करवायी जाती रही है। जो वास्तव में एक सराहनीय प्रयास कहा जा सकता है।

उसी प्रकार संगीत के उत्थान में संस्थाओं का योगदान भी उल्लेखनीय रहा है। इन संस्थाओं में होने वाले आयोजनों में प्रमुख हैः– आचार्य चन्द्रशेखर पन्त जयन्ती (हल्द्वानी), स्व. राजेश्वर शारदा स्मृति संगीत समारोह (हल्द्वानी), पं. विष्णु नारायण भातखण्डे संगीत जयन्ती (हल्द्वानी), स्व. दुर्गादास मुखर्जी स्मृति समारोह (नैनीताल), हीरक जयन्ती (नैनीताल), डी. आर. पार्वतीकर संगीत समारोह (ऋषिकेश), स्व. वेदप्रकाश गुप्ता स्मृति संगीत समारोह (हल्द्वानी), स्व. कुमारी निधि संगीत स्मृति समारोह (हल्द्वानी), स्व. विनोद कुमार संगीत स्मृति समारोह (नैनीताल) इसके अतिरिक्त गुरु पूर्णिमा, सरस्वती पूजन, मल्हार संध्या, संगीत संध्या आदि कार्यक्रमों में स्थानीय कलाकार, अतिथि कलाकार व नवोदित कलाकारों के कार्यक्रम रखे जाते हैं।

संगीत में विशेष योगदान के लिये सन् 1938–40 में 'शारदा संघ' नामक संस्था की स्थापना नैनीताल जिले में हुई। यह सबसे प्राचीन संस्थाओं में अपना विशेष स्थान रखती हैं। इसके तत्त्वाधान में होने वाले कार्यक्रमों की शुरूवात में स्थानीय स्तर पर कार्यक्रमों का संचालन होता रहा। विशेष कायक्रमों ''वर्ष, 1985 से 1988 में उस्ताद शरफराज हुसैन खाँ, मुजाहिद हुसैन खाँ, मुशरिद हुसैन खाँ का गायन, गोपालदास जी का पखावज वादन, उस्ताद नसीर अमीन्नूद्दीन खाँ डागर का ध्रुपद गायन, उस्ताद गुलाम साहिद खाँ का गायन, शीतल प्रसाद का तबला वादन, श्रीमती पूर्णिमा पाण्डे का कत्थक नृत्य, श्री कुमार मिश्र का इसराज वादन, सुप्रभात पाल का सरोद वादन, सुरज कुमार दीक्षित का गायन, सुभाष राय का बासुरी वादन, श्री वासुदेव शरण का गायन, श्री विश्वनाथ

श्रीखण्डे का गायन, गुन्देचा बन्धुओं का ध्रुपद गायन सुनने का अवसर श्रोताओं को शुलभ हुआ।''[23]

''वर्ष 1989 से 2008 के बीच जो स्मरणीय संगीत सभायें 'शारदा संघ संगीत विद्यालय में आयोजित हुई। उनमें पं. शिवकुमार शर्मा का सन्तूर वादन, पं. देवव्रत चौधरी और प्रतीक चौधरी का सितार वादन, उस्ताद इलियाज खाँ का सितार वादन, श्री विश्वमोहन भट्ट का मोहन वीणा वादन, श्री बलदेव राज वर्मा का गायन, प्रो. यशपाल का गायन, पं. जगदीश मोहन का गायन, श्री सुनील कुमार का बाँसुरी वादन, रामकुमार शर्मा, सुभाष मिश्रा, संदीप पंकज, उषा अग्रवाल का गायन आदि प्रमुख है।''[24]

वही कुमाऊँ मण्डल में स्थानीय कलाकार का योगदान भी अग्रणीय रहा है। जिनमे श्री नलिन ढ़ोलकिया (गायन), स्व. श्री देवीराम आर्या (सितार), श्री विश्म्भर नाथ 'सखा' (गायन), श्री शेखर हलधर (सुरबहार), श्री हरिकृष्ण साह (सितार), श्री विजय कृष्ण (तबला), कु. रेखा साह (गायन), स्व. तारा प्रसाद पाण्डे (गायन), आशा पाण्डे (गायन), श्री दिनेश डंडरियाल (गायन), स्व. विनोद कुमार (तबला), श्री चन्द्रशेखर तिवारी (सरोद), श्री हरीश पन्त (वॉयलिन), भगवती भट्ट, राजेश, वाचस्पति डयूडी (तबला), कु. करूणा देवी (गायन) आदि की प्रस्तुति का भी श्रोताओं ने आनन्द लिया।[25]

नैनीताल में संगीत कला अकादमी द्वारा आयोजित संगीत सभी में गायन प्रस्तुत करती मेहा साह

संगीत संध्या में अतिथि कलाकार उषा अग्रवाल तथा हरि कृष्ण साह का सितार वादन

नवोदित कलाकारों के प्रदर्शन भी विद्यालय द्वारा आयोजित किये जाते रहे जिनमें आनन्द सिंह राजेश, लेनिन (तबला), रवि जोशी, पूर्णिमा पाण्डे, मेहा साह (गायन), गोपाल कृष्ण साह (सितार), पार्थो राय चौधरी (सन्तूर), स्मृत तिवारी (सरोद) इत्यादि ने अपनी कला का प्रदर्शन कर अपनी क्षमता तथा भावी संभावनाओं का आभास भी कराया।[26]

संगीत के संरक्षण व संवर्द्धन के लिये वातावरण का अनुकूल होना अति आवश्यक है, जिसमें विद्यार्थी विद्या के लिये, कलाकार कला के लिये तथा आम जन उसके आनन्द को बढ़ाने के लिये हमेशा प्रयत्नशील रहे हैं। संगीत का वातावरण बनाने के लिये सभी का रूझान इस विद्या की ओर होना जरूरी है। संगीत संस्थायें उपरोक्त गतिविधियों में युवाओं को तथा शास्त्रीय संगीत के विकास को गति प्रदान करने में कोई कसर नहीं छोड़ रही है। इन संस्थाओं में वर्ष भर कोई न कोई सांगीतिक कार्यक्रम जैसे गीत, गज़ल, भजन संध्या, मल्हार संध्या, शास्त्रीय संगीत संध्या, लोक संगीत संध्या, शनिवारिय बैठके, सम्भागीय प्रतियोगिता, नृत्य नाटिका, प्रातःकालीन संगीत बैठके, स्थानीय स्तर पर कनिष्ठ व वरिष्ठ वर्ग की प्रतियोगितायें, बाल नृत्य शिविर, कुमाऊँ की होली बैठक पर पूरे कुमाऊँ से आमन्त्रित होली गायकों की विचार गोष्ठी, संगीत प्रशिक्षण कार्यशालायें, सम्मेलन, 'युगमंच' युवा महोत्सव आदि महत्त्वपूर्ण संगीत समारोहों में सभी की भागीदारी प्रशंसनीय है।

इन कायक्रमों से कुमाऊँ मण्डल के साथ–साथ यहाँ के विद्यार्थी वर्ग को भी लाभ है। इससे उनकी रूचि संगीत के प्रति बढ़ेगी तथा संगीत के प्रति

उनका परिष्कृत दृष्टिकोण प्रेरणा तथा विश्वास उत्पन्न करने वाला होगा। अन्ततः कहा जा सकता है कि शास्त्रीय संगीत के सन्दर्भित कई संस्थायें विकासोन्मुख गतिविधियों का संचालन आज भी इस अंचल में पल्लवित हो रहा है तथा इस प्रयास में कलाकारों के साथ संस्थाओं ने भी अपना स्थान संगीत के विकास में सुनिश्चित किया, जो आगे भी सुनिश्चित रहेगा।

पाद टिप्पणी –

1 ढोलकिया, पं. नलिन (शास्त्रीय गायक) द्वारा साक्षात्कार, शोधार्थी ऋतु रानी, स्थान श्री अरविन्द आश्रम नैनीताल, दिनांक – 19/3/2016

2 साह, डॉ. सुषमा (2005), शरद नन्दा स्मारिका (होली का ऐतिहासिक परिचय कुमाऊँ के परिप्रेक्ष्य में) लेखिका डॉ. सावित्री कैड़ा जन्तवाल, नगर पालिका परिषद नैनीताल एवं पर्यटन विभाग उत्तरांचल, पृ.सं.–57

3 पन्त, श्री शरद (2013), कुमाऊँनी बैठकी होलियाँ, एक संकलन, ओम प्रिन्टर्स (पाण्डेय) मुल्तानी मोड़, प्रकाशन काशीपुर, (ऊधमसिंह नगर), पृ.सं.-ii

4 साह, श्री गंगा प्रसाद (होली गायक तथा समाज सेवक) द्वारा साक्षात्कार, शौधार्थी ऋतुरानी स्थान नैनीताल, दिनांक – 18/2/2016

5 साह, श्री गंगा प्रसाद (2010), श्री नन्दा स्मारिका (कुमाऊँनी होली तथा उसका साहित्यिक पक्ष) लेखक गंगा प्रसाद साह, पृ.सं.–47

6 वही, पृ.सं.–45

7 यजुर्वेदी, डॉ. सरित पाठक (2011), उत्तराखण्ड : संगीत एवं संस्कृति, आयुष पब्लिशिंग हाऊस, नवीन साहदरा प्रकाशन, दिल्ली, पृ.सं.–355

8 वही, पृ.सं.–356

9 वही

10 साह, श्री गंगा प्रसाद (2008), श्री नन्दा देवी स्मारिका (कुमाऊँनी रामलीला : नैनीताल के परिप्रेक्ष्य में) लेखिका डॉ. सावित्री कैडा जन्तवाल, नगरपालिका परिषद् नैनीताल एवं पर्यटन विभाग उत्तरांचल, पृ.सं.–54

11 उप्रेती, डॉ. पंकज (2008), रामलीला नाटक (कुमाऊँ की रामलीला का अध्ययन एवं स्वरांकन), पिघलता हिमालय, प्रकाशन हल्द्वानी, नैनीताल, पृ.सं.–10

12 वही, पृ.सं.–10, 11

13 वही, पृ.सं.–11

14 वही

15 वही, पृ.सं.–12

16 वही, पृ.सं.–28

17 वही, पृ.सं.–29

18 चन्द्र, डॉ. हुकम (1998), आधुनिक काल में शास्त्रीय संगीत, ईर्स्टन बुक लिंकर्स प्रकाशन, दिल्ली, पृ.सं.–161

19 वही

20 www.Sangeetnatak.gov.in

21 वही

22 वही

23 साह, राजेन्द्र लाल साह (1938, 2014), हीरक जयन्ती स्मारिका काल–प्रवाह (शारदा संघ का इतिहास) शारदा संघ प्रकाशन, नैनीताल, पृ.सं.–33

24 वही, पृ.सं.–33

25 वही, पृ.सं.–34

26 वही